अध्याय 7

राष्ट्रवाद

परिचय

इस अध्याय में हम राष्ट्र और राष्ट्रवाद से संबंधित विचारों की जानकारी हासिल करेंगे और उन पर चर्चा करेंगे। हमारे लिए यहाँ यह समझने का अधिक महत्त्व नहीं है कि राष्ट्रवाद का उदय क्यों हुआ और इससे जुड़े कार्य क्या हैं। बल्कि हमारे लिए राष्ट्रवाद के बारे में सावधानीपूर्वक सोचना और इसके साथ इसमें निहित अधिकारों और आकांक्षाओं की परख करना महत्त्वपूर्ण होगा।

इस अध्याय के अध्ययन-मनन से हम–

- राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणाओं को समझने,
- राष्ट्रवाद की शक्ति और सीमाओं को स्वीकार करने और
- लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद के बीच संबंध सुनिश्चित करने की ज़रूरत को स्वीकार करने में समर्थ हो सकेंगे।

7.1 राष्ट्रवाद का परिचय

राष्ट्रवाद शब्द के प्रति आम समझ क्या है? अगर मोटे तौर पर जनता की राय लें तो हम इस सिलसिले में देशभक्ति, राष्ट्रीय ध्वज, देश के लिए बलिदान जैसी बातें सुनेंगे। दिल्ली में गणतंत्र दिवस की परेड भारतीय राष्ट्रवाद का बेजोड़ प्रतीक है। यह प्रतीक सत्ता और शक्ति के साथ विविधता की भावना को भी प्रदर्शित करता है। कई लोग इस विविधता को भारतीय राष्ट्र से जोड़ते हैं। लेकिन अगर हम गहराई में जाने की कोशिश करें तो पाएँगे कि राष्ट्रवाद की सुस्पष्ट और सर्वमान्य परिभाषा करना आसान नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि हमें अपना प्रयास छोड़ देना चाहिए। राष्ट्रवाद का अध्ययन करना इसलिए ज़रूरी है कि वैश्विक मामलों में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

पिछली दो शताब्दियों के दौरान राष्ट्रवाद एक ऐसे सम्मोहक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में उभरा है जिसने इतिहास रचने में योगदान किया है। इसने उत्कट निष्ठाओं के साथ-साथ गहरे विद्वेषों को भी प्रेरित किया है। इसने जनता को जोड़ा है तो विभाजित भी किया है। इसने अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने में मदद की तो इसके साथ यह विरोध, कटुता और युद्धों का कारण भी रहा है। साम्राज्यों और राष्ट्रों के ध्वस्त होने का यह भी एक कारण रहा है। राष्ट्रवादी संघर्षों ने राष्ट्रों और साम्राज्यों की सीमाओं के निर्धारण-पुनर्निर्धारण में योगदान किया है। आज भी दुनिया का एक बड़ा भाग विभिन्न राष्ट्र-राज्यों में बंटा हुआ है। हालाँकि राष्ट्रों की सीमाओं के पुनर्संयोजन की प्रक्रिया अभी खत्म नहीं हुई है और मौजूदा राष्ट्रों के अंदर भी अलगाववादी संघर्ष आम बात है।

राष्ट्रवाद कई चरणों से गुजर चुका है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप में इसने कई छोटी-छोटी रियासतों के एकीकरण से वृहत्तर राष्ट्र-राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। आज के जर्मनी और इटली का गठन एकीकरण और सुदृढ़ीकरण की इसी प्रक्रिया के ज़रिए हुआ था। लातिनी अमेरिका में बड़ी संख्या में नए राज्य भी स्थापित किए गए थे। राज्य की सीमाओं के सुदृढ़ीकरण के साथ स्थानीय निष्ठाएँ और बोलियाँ भी उत्तरोत्तर राष्ट्रीय निष्ठाओं एवं सर्वमान्य जनभाषाओं के रूप में विकसित हुईं। नए राष्ट्रों के लोगों ने एक नई राजनीतिक पहचान अर्जित की, जो राष्ट्र-राज्य की सदस्यता पर आधारित थी। पिछली शताब्दी में हमने अपने देश को सुदृढ़ीकरण की ऐसी ही प्रक्रिया से गुजरते देखा है।

लेकिन राष्ट्रवाद बड़े-बड़े साम्राज्यों के पतन में हिस्सेदार भी रहा है। यूरोप में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ऑस्ट्रियाई-हंगेरियाई और रूसी साम्राज्य तथा इनके साथ एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच और पुर्तगाली साम्राज्य के विघटन के मूल में राष्ट्रवाद ही था। भारत तथा अन्य पूर्व उपनिवेशों के औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र होने के संघर्ष भी राष्ट्रवादी संघर्ष थे। ये संघर्ष विदेशी नियंत्रण से स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य स्थापित करने की आकांक्षा से प्रेरित थे।

राष्ट्रों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया अभी जारी है। 1960 के दशक से ही, सीधे तौर पर सुस्थिर राष्ट्र-राज्य भी कुछ समूह या अंचलों द्वारा उठाई गई राष्ट्रवादी माँगों का सामना करते रहे हैं। इन माँगों में पृथक राज्य की माँग भी शामिल है। आज दुनिया के अनेक भागों में हम ऐसे राष्ट्रवादी संघर्षों को देख सकते हैं जो मौजूदा राष्ट्रों के अस्तित्व के लिए खतरे पैदा कर रहे हैं। ऐसे पृथकतावादी आंदोलन अन्य जगहों के साथ-साथ कनाडा के क्यूबेकवासियों, उत्तरी स्पेन के बास्कवासियों, तुर्की और इराक के कुर्दों तथा श्रीलंका के तमिलों द्वारा भी चलाए जा रहे हैं। भारत के कुछ समूह भी राष्ट्रवाद की भाषा बोलते हैं। आज अरबी राष्ट्रवाद में तमाम अरबी देशों को एक अखिल अरब संघ एकताबद्ध करने की उम्मीद पाल सकता है। लेकिन बास्क या कुर्द जैसे पृथकतावादी आंदोलन तो मौजूदा राज्यों के विखंडन के लिए ही संघर्षरत हैं।

हमारे बीच इस सवाल पर सहमति हो सकती है कि दुनिया में राष्ट्रवाद आज भी प्रभावी शक्ति है। लेकिन राष्ट्र या राष्ट्रवाद जैसे शब्दों की परिभाषा के संबंध में किसी सहमति पर पहुँचना बहुत कठिन है। आखिर राष्ट्र क्या है? लोग राष्ट्रों का निर्माण क्यों करते हैं और राष्ट्र क्या करने की तीव्र इच्छा जगाते हैं? लोग अपने राष्ट्र की खातिर त्याग करने और प्राण तक न्यौछावर करने के लिए क्यों तैयार रहते हैं? राष्ट्रत्व (देशभक्ति) के दावे राज्यत्व (राजकीय शक्ति) के दावों से क्यों और कैसे जुड़ जाते हैं? क्या राष्ट्रों को पृथक रहने या राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त है? क्या पृथक राज्यत्व को स्वीकार किए बगैर राष्ट्रवाद के दावे को तुष्ट किया जा सकता है? इस अध्याय में हम इनमें से कुछ मुद्दों की पड़ताल करेंगे।

7.2 राष्ट्र और राष्ट्रवाद

राष्ट्र जनता का कोई आकस्मिक समूह नहीं है। लेकिन यह मानव समाज में पाए जाने वाले अन्य समूहों अथवा समुदायों से अलग है। यह परिवार से भी अलग है। परिवार तो प्रत्यक्ष संबंधों पर आधारित होता है जिसका प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्यों के व्यक्तित्व और चरित्र के बारे में व्यक्तिगत जानकारी रखता है। यह जनजातीय, जातीय और अन्य सगोत्रीय समूहों से भी अलग है। इन समूहों में विवाह और वंश परंपरा सदस्यों को आपस में जोड़ती हैं। इसीलिए यदि हम सभी सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से नहीं भी जानते हों तो भी ज़रूरत पड़ने पर हम उन सूत्रों

को ढूँढ निकाल सकते हैं जो हमें आपस में जोड़ते हैं। लेकिन राष्ट्र के सदस्य के रूप में हम अपने राष्ट्र के अधिकतर सदस्यों को सीधे तौर पर न कभी जान पाते हैं और न ही उनके साथ वंशानुगत नाता जोड़ने की ज़रूरत पड़ती है। फिर भी राष्ट्रों का वजूद है, लोग उनमें रहते हैं और उनका आदर करते हैं।

आमतौर से यह माना जाता है कि राष्ट्रों का निर्माण ऐसे समूह द्वारा किया जाता है जो कुल या भाषा अथवा धर्म या फिर जातीयता जैसी कुछेक निश्चित पहचान का सहभागी होता है। लेकिन ऐसे निश्चित विशिष्ट गुण वास्तव में हैं ही नहीं जो सभी राष्ट्रों में समान रूप से मौजूद हों। कई राष्ट्रों की अपनी कोई एक सामान्य भाषा नहीं है। कनाडा का उदाहरण सामने है। कनाडा में अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी भाषाभाषी लोग साथ रहते हैं। भारत में भी अनेक भाषाएँ हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में और भिन्न-भिन्न समुदायों द्वारा बोली जाती हैं। बहुत से राष्ट्रों में उनको जोड़ने वाला कोई सामान्य धर्म भी नहीं है। नस्ल या कुल जैसी अन्य विशिष्टताओं के लिए भी यही कहा जा सकता है।

तब वह क्या है, जो राष्ट्र का निर्माण करता है? राष्ट्र बहुत हद तक एक 'काल्पनिक' समुदाय होता है, जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र में बंधा होता है। यह कुछ खास मान्यताओं पर आधारित होता है जिन्हें लोग उस समग्र समुदाय के लिए गढ़ते हैं, जिससे वे अपनी पहचान कायम करते हैं। आइए, हम राष्ट्र के बारे में लोगों की कुछ मान्यताओं को पहचानने और समझने की कोशिश करें।

आओ कुछ करके सीखे

अपनी भाषा में देशभक्ति के किसी गीत की खोज करो। इस गीत में राष्ट्र को किस तरह दिखाया गया है। अपनी भाषा में देशभक्ति की किसी फिल्म की खोज करो और उसे देखो। इस फिल्म में देशभक्ति को किस तरह दिखाया गया है और इसकी जटिलताओं को किस तरह हल किया है।

साझे विश्वास

पहला, राष्ट्र विश्वास के ज़रिए बनता है। राष्ट्र पहाड़, नदी या भवनों की तरह नहीं होते, जिन्हें हम देख सकते हैं और जिनका स्पर्श महसूस कर सकते हैं। वे ऐसी चीज़ें भी नहीं हैं जिनका लोगों के विश्वासों से स्वतंत्र अस्तित्व हो। किसी समाज के लोगों को राष्ट्र की संज्ञा देना उनके शारीरिक विशेषताओं या आचरण पर टिप्पणी करना नहीं है। यह समूह के भविष्य के लिए सामूहिक पहचान और दृष्टि का प्रमाण है, जो स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व का आकांक्षी है। इस मायने में राष्ट्र की तुलना किसी टीम से की जा सकती है। जब हम टीम की बात करते हैं तो हमारा मतलब लोगों के ऐसे समूह से है, जो एक साथ काम करते या खेलते हों और इससे भी ज्यादा ज़रूरी है कि वे स्वयं को एकीकृत

समूह मानते हों। अगर वे अपने बारे में इस तरह नहीं सोचते तो एक टीम की उनकी हैसियत जाती रहेगी और वे खेल खेलने या काम करने वाले महज अलग-अलग व्यक्ति रह जाएँगे। एक राष्ट्र का अस्तित्व तभी कायम रहता है जब उसके सदस्यों को यह विश्वास हो कि वे एक-दूसरे के साथ हैं।

इतिहास

दूसरा, जो लोग अपने को एक राष्ट्र मानते हैं उनके भीतर अपने बारे में बहुधा स्थायी ऐतिहासिक पहचान की भावना होती है। यानी राष्ट्र खुद को इस रूप में देखते हैं जैसे वे बीते अतीत के साथ-साथ आगत भविष्य को समेटे हुए हों। वे देश की स्थायी पहचान का खाका प्रस्तुत करने के लिए साझी स्मृतियों, किंवदंतियों और ऐतिहासिक अभिलेखों की रचना के ज़रिये अपने लिए इतिहासबोध निर्मित करते हैं। इसी प्रकार भारत के राष्ट्रवादियों ने यह दावा करने के लिए कि एक सभ्यता के बतौर भारत का लंबा और अटूट इतिहास रहा है और यह सभ्यतामूलक निरंतरता और एकता भारतीय राष्ट्र की बुनियाद है, देश की प्राचीन सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत तथा अन्य उपलब्धियों का साक्ष्य प्रस्तुत किया। उदाहरणस्वरूप नेहरू ने अपनी किताब 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में लिखा है – ''हालाँकि बाहरी रूप में लोगों में विविधता और अनगिनत विभिन्नताएँ थीं, लेकिन हर जगह एकात्मकता की वह जबर्दस्त छाप थी जिसने हमें युगों तक साथ जोड़े रखा, चाहे हमें जो भी राजनीतिक भविष्य या दुर्भाग्य झेलना पड़ा हो।

भूक्षेत्र

तीसरा, बहुत सारे राष्ट्रों की पहचान एक खास भौगोलिक क्षेत्र से जुड़ी हुई है। किसी खास भूक्षेत्र पर लंबे समय तक साथ-साथ रहना और उससे जुड़ी साझे अतीत की यादें लोगों को एक सामूहिक पहचान का बोध देती हैं। ये उन्हें एक होने का अहसास भी देती है। इसीलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जो लोग स्वयं को एक राष्ट्र के रूप में देखते हैं एक गृहभूमि की बात करते हैं। ये लोग जिस भूक्षेत्र पर अपना अधिकार जमाते हैं, जिस जगह रहते हैं, उस पर अपना दावा पेश करते हैं और उसे बहुत महत्त्व देते हैं। राष्ट्र अपनी-अपनी गृहभूमि का

विभिन्न तरीकों से बखान करते हैं। जैसे, कोई इसे मातृभूमि या पितृभूमि कहता है तो कोई पवित्र भूमि। उदाहरण के लिए, यहूदी लोगों ने अपने इतिहास में ज्यादातर समय दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बिखरे-फैले रहने के बावजूद, हमेशा दावा किया कि उनका मूल गृह-स्थल फिलीस्तीन, उनका 'स्वर्ग', है। भारतीय राष्ट्र की पहचान भारतीय उपमहाद्वीप की नदियों, पर्वतों और अंचलों से है। चूँकि एक ही भूक्षेत्र पर एक से अधिक समूह का दावा हो सकता है, लिहाजा गृहभूमि की आकांक्षा दुनिया भर में संघर्ष का एक बड़ा कारण रही है।

साझे राजनीतिक आदर्श

चौथा, हालाँकि अपना भूक्षेत्र और साझी ऐतिहासिक पहचान लोगों में एक होने का बोध पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन भविष्य के बारे में साझा नज़रिया और अपना स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व बनाने की सामूहिक चाहत ही वह मूल बात है, जो राष्ट्र को बाकी समूहों से अलग करती हैं। राष्ट्र के सदस्यों की इस बारे में एक साझा दृष्टि होती है कि वे किस तरह का राज्य बनाना चाहते हैं। बाकी बातों के अलावा वे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और उदारवाद जैसे मूल्यों और सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं। असल में ये ही वे शर्तें हैं जिसके आधार पर वे साथ-साथ आना और रहना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में यह विचार राष्ट्र के रूप में उनकी राजनीतिक पहचान को बताते हैं।

लोकतंत्र में कुछ राजनीतिक मूल्यों और आदर्शों के लिए साझी प्रतिबद्धता ही किसी राजनीतिक समुदाय या राष्ट्र का सर्वाधिक वांछित आधार होता है। इसके अंतर्गत राजनीतिक समुदाय के सदस्य कुछ दायित्वों से बंधे होते हैं। ये दायित्व सभी लोगों के नागरिकों के रूप में अधिकारों को पहचान लेने से पैदा होते हैं। अगर राष्ट्र के नागरिक अपने सह नागरिकों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को जान और मान लेते हैं तो इससे राष्ट्र मज़बूत ही होता है। हम यहाँ तक कह सकते हैं आपसी जिम्मेदारियों के इस परिप्रेक्ष्य को मान लेना राष्ट्र के प्रति वफादारी की सबसे कड़ी परीक्षा है।

साझी राजनीतिक पहचान

बहुत से लोगों का मानना है कि हम जैसा राज्य या समाज बनाना चाहते हैं उसके बारे में साझी राजनीतिक दृष्टि व्यक्तियों को एक राष्ट्र के रूप में बांधने के लिए पर्याप्त नहीं होती। इसके स्थान पर वह एक समान भाषा या जातीय वंश परंपरा जैसी साझी सांस्कृतिक पहचान चाहते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक ही भाषा बोलना आपसी संवाद को काफी आसान बना देता है। समान धर्म होने पर बहुत सारे विश्वास और सामाजिक रीति-रिवाज़ साझे हो जाते हैं। एक जैसे त्यौहार मनाना, एक जैसे मौकों पर छुट्टियाँ चाहना और एक जैसे प्रतीकों को धारण करना लोगों को करीब ला सकता है, लेकिन साथ ही यह उन मूल्यों के लिए खतरा भी उत्पन्न कर सकता है जिन्हें हम लोकतंत्र में महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि दुनिया के सभी बड़े धर्म अंदरूनी तौर से विविधता से भरे हुए हैं। वे अपने समुदाय के अंदर चलने वाले संवाद के कारण ही बने और बढ़े हैं। परिणामस्वरूप धर्म के अंदर बहुत से पंथ बन जाते हैं और धार्मिक ग्रंथों और नियमों की उनकी व्याख्याएँ काफी अलग-अलग होती हैं। अगर हम इन विभिन्नताओं की अवहेलना करें और एक समान धर्म के आधार पर एक पहचान स्थापित कर दें तो आशंका है कि हम बहुत ही वर्चस्ववादी और दमनकारी समाज का निर्माण कर दें।

दूसरा कारण यह है कि अधिकतर समाज सांस्कृतिक रूप से विविधता से भरे हैं। एक ही भूक्षेत्र में विभिन्न धर्म और भाषाओं के लोग साथ-साथ रहते हैं। किसी राज्य की सदस्यता की शर्त के रूप में किसी खास धार्मिक या भाषायी पहचान को आरोपित कर देने से कुछ समूह निश्चित रूप से शामिल होने से रह जाएँगे। इससे शामिल नहीं किए गए समूह की धार्मिक स्वतंत्रता बाधित होगी या राष्ट्रीय भाषा नहीं बोलने वाले समूहों की हानि होगी। दोनों स्थितियों में 'समान बर्ताव और सबके लिए स्वतंत्रता' के उस आदर्श में भारी कटौती होगी, जिसे हम लोकतंत्र में अमूल्य मानते हैं। इन्हीं कारणों से यह बेहतर होगा कि राष्ट्र की कल्पना राजनीतिक शब्दावली में की जाए, न कि सांस्कृतिक पदों में। इसका मतलब यह है कि लोकतंत्र में किसी खास धर्म, नस्ल या भाषा से संबद्धता की जगह एक मूल्य समूह के प्रति निष्ठा की ज़रूरत होती है। इस मूल्य-समूह को देश के संविधान में भी दर्ज़ किया जा सकता है।

ऊपर कुछ स्थितियों की पहचान की गई है जिनके ज़रिए राष्ट्र अपनी सामूहिक पहचान को व्यक्त करते हैं। हमने यह भी देखा कि क्यों लोकतांत्रिक राज्य इस पहचान को साझे राजनीतिक आदर्शों के आधार पर गढ़ते हैं। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अनुत्तरित रह गया है कि आखिर लोग खुद को राष्ट्र के रूप में क्यों निरूपित करते हैं? विभिन्न राष्ट्रों की कुछ आकांक्षाएँ क्या हैं? आगे के दो खंडों में हम इस प्रश्नों पर विचार करने की कोशिश करेंगे।

7.3 राष्ट्रीय आत्म-निर्णय

बाकी सामाजिक समूहों से अलग राष्ट्र अपना शासन अपने आप करने और अपने भविष्य को तय करने का अधिकार चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वे आत्म-निर्णय का अधिकार माँगते हैं। आत्म-निर्णय के अपने दावे में राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से माँग करता है कि उसके पृथक राजनीतिक इकाई या राज्य के दर्ज़े को मान्यता और स्वीकार्यता दी जाए। अक्सर ऐसी माँग उन लोगों की ओर से आती है जो एक लंबे समय से किसी निश्चित भू-भाग पर साथ-साथ रहते आए हों और जिनमें साझी पहचान का बोध हो। कुछ मामलों में आत्म-निर्णय के ऐसे दावे एक स्वतंत्र राज्य बनाने की उस इच्छा से भी जुड़े होते हैं। इन दावों का संबंध किसी समूह की संस्कृति की संरक्षा से होता है।

बास्क में आत्म-निर्णय की माँग

राष्ट्रीय आत्म-निर्णय की माँग दुनिया के विभिन्न भागों में उठ रही है। आइए, ऐसे एक मामले पर नजर डालें। बास्क स्पेन का एक पहाड़ी और समृद्ध क्षेत्र है। इस क्षेत्र को स्पेनी सरकार ने स्पेन राज्यसंघ के अंतर्गत 'स्वायत्त' क्षेत्र का दर्जा दे रखा है, लेकिन बास्क राष्ट्रवादी आंदोलन के नेतागण इस स्वायत्तता से संतुष्ट नहीं हैं। वे चाहते हैं कि बास्क स्पेन से अलग होकर एक स्वतंत्र देश बन जाये। इस आंदोलन के समर्थकों ने अपनी माँग पर ज़ोर डालने के लिए संवैधानिक और हाल तक हिंसक तरीकों का इस्तेमाल किया है।

बास्क राष्ट्रवादियों का कहना है कि उनकी संस्कृति स्पेनी संस्कृति से बहुत भिन्न है। उनकी अपनी भाषा है, जो स्पेनी भाषा से बिल्कुल नहीं मिलती है। हालाँकि आज बास्क के मात्र एक-तिहाई लोग उस भाषा को समझ पाते हैं। बास्क क्षेत्र की पहाड़ी भू-संरचना उसे शेष स्पेन से भौगोलिक तौर पर अलग करती है। रोमन काल से अब तक बास्क क्षेत्र ने स्पेनी शासकों के समक्ष अपनी स्वायत्तता का कभी समर्पण नहीं किया। उसकी न्यायिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय प्रणालियाँ उसकी अपनी विशिष्ट व्यवस्था के ज़रिये संचालित होती थीं।

आधुनिक बास्क राष्ट्रवादी आंदोलन की शुरुआत तब हुई जब उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में स्पेनी शासकों ने उसकी विशिष्ट राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था को समाप्त करने की कोशिश की। बीसवीं सदी में स्पेनी तानाशाह फ्रैंको ने इस स्वायत्तता में और कटौती कर दी। उसने बास्क भाषा को सार्वजनिक स्थानों, यहाँ तक कि घर में भी बोलने पर पाबंदी लगा दी थी। ये दमनकारी कदम अब वापस लिये जा चुके हैं। लेकिन बास्क आंदोलनकारियों का स्पेनी शासन के प्रति संदेह और क्षेत्र में बाहरी लोगों के प्रवेश का भय बरकरार है। उनके विरोधियों का कहना है कि बास्क अलगाववादी एक ऐसे मुद्दे का राजनीतिक फायदा उठाने की कोशिश कर रहे हैं जिसका समाधान हो चुका है।

क्या आपके विचार में बास्क राष्ट्रवादियों की अलग राष्ट्र की माँग जायज है? क्या बास्क एक राष्ट्र है? इस सवाल का उत्तर देने के पहले आप और किन बातों की जानकारी चाहेंगे?

क्या आप दुनिया के दूसरे भागों के ऐसे उदाहरणों के बारे में विचार कर सकते हैं? क्या आप अपने देश के ऐसे क्षेत्रों और समूहों के बारे में विचार कर सकते हैं जहाँ, इस तरह की माँग की जा रही है?

विविध स्रोत जिसमें www.en.wikipedia.org भी शामिल है।
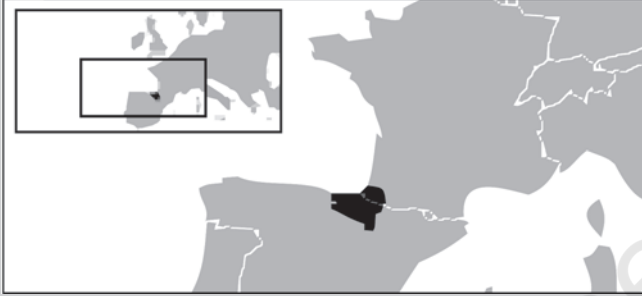
राष्ट्रवाद

दूसरी तरह के बहुत से दावे उन्नीसवीं सदी के यूरोप में सामने आए उस समय 'एक संस्कृति – एक राज्य' की मान्यता ने ज़ोर पकड़ा। परिणामस्वरूप पहले विश्वयुद्ध के बाद राज्यों की पुनर्व्यवस्था में 'एक संस्कृति–एक राज्य' के विचार को आजमाया गया। वर्साय की संधि से बहुत–से छोटे और नव स्वतंत्र राज्यों का गठन हुआ लेकिन उस समय उठायी जा रही आत्म–निर्णय की सभी माँगों को संतुष्ट करना वास्तव में असंभव था। इसके अलावा 'एक संस्कृति–एक राज्य' की माँगों को संतुष्ट करने से राज्यों की सीमाओं में बदलाव हुए। इससे सीमाओं के एक ओर से दूसरी ओर बहुत बड़ी जनसंख्या का विस्थापन हुआ। इसके परिणामस्वरूप लाखों लोग अपने घरों से उजड़ गए और उस जगह से उन्हें बाहर धकेल दिया गया जहाँ पीढ़ियों से उनका घर था। बहुत सारे लोग सांप्रदायिक हिंसा के भी शिकार बने।

अलग–अलग सांस्कृतिक समुदायों को अलग–अलग राष्ट्र–राज्य मिले– इसे ध्यान में रखकर सीमाओं को बदला गया। इस कोशिश के कारण मानव जाति को भारी किमत चुकानी पड़ी। इस प्रयास के बावजूद यह सुनिश्चित करना संभव नहीं हो सका कि नवगठित राज्यों में केवल एक ही नस्ल के लोग रहें। वास्तव में अधिकतर राज्यों की सीमाओं के अंदर एक से अधिक नस्ल और संस्कृति के लोग रहते थे। ये छोटे–छोटे समुदाय राज्य के अंदर अल्पसंख्यक थे और अक्सर नुकसानदेह स्थितियों में रहते थे। इस विकास का सकारात्मक पहलू यह था कि उन बहुत सारे राष्ट्रवादी समूहों को राजनीतिक मान्यता प्रदान की गयी जो स्वयं को एक अलग राष्ट्र के रूप में देखते थे और अपने भविष्य को तय करने तथा अपना शासन स्वयं चलाना चाहते थे। लेकिन राज्यों के भीतर अल्पसंख्यक समुदायों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही।

जब एशिया एवं अफ्रीका औपनिवेशिक प्रभुत्व के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे, तब राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों ने राष्ट्रीय आत्म–निर्णय के अधिकार की भी घोषणा की थी। राष्ट्रीय आंदोलनों का मानना था कि राजनीतिक स्वाधीनता राष्ट्रीय समूहों को सम्मान एवं मान्यता प्रदान करेगी और साथ ही वहाँ के लोगों के सामूहिक हितों की रक्षा भी करेगी। अधिकांश राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन राष्ट्र के लिए न्याय, अधिकार और समृद्धि हासिल करने के लक्ष्य से प्रेरित थे। हालाँकि यहाँ भी प्रत्येक सांस्कृतिक समूह जिनमें से कुछ पृथक राष्ट्र होने का दावा करते थे– के लिए राजनीतिक स्वाधीनता तथा राज्यसत्ता सुनिश्चित करना लगभग असंभव साबित हुआ। इस क्षेत्र के अनेक देश आबादी के देशांतरण, सीमाओं पर युद्ध और हिंसा की चपेट में आते रहे। इस प्रकार, हम उन राष्ट्र–राज्यों को विरोधाभासी स्थिति में पाते हैं जिन्होंने संघर्षों की बदौलत स्वाधीनता प्राप्त की, लेकिन अब वे अपने भू–क्षेत्रों में राष्ट्रीय आत्म–निर्णय के अधिकार की माँग करने वाले अल्पसंख्यक समूहों का विरोध कर रहे हैं।

वस्तुत: आज दुनिया की सारी राज्यसत्ताएँ इस दुविधा में फँसी हैं कि आत्म–निर्णय के आंदोलनों से कैसे निपटा जाए और इसने राष्ट्रीय आत्म–निर्णय के अधिकार पर सवाल खड़े कर दिये हैं। बहुत–से लोग यह महसूस करने लगे हैं कि समाधान नए राज्यों के गठन में नहीं वरन् वर्तमान राज्यों को अधिक लोकतांत्रिक और समतामूलक बनाने में है। समाधान यह

सुनिश्चित करने में है कि अलग-अलग सांस्कृतिक और नस्लीय पहचानों के लोग देश में समान नागरिक और साथियों की तरह सह-अस्तित्वपूर्वक रह सकें। यह न केवल आत्म-निर्णय के नए दावों के उभार से पैदा होने वाली समस्याओं के समाधान के लिए वरन् मज़बूत और एकताबद्ध राज्य बनाने के लिए ज़रूरी होगा। जो राष्ट्र-राज्य अपने शासन में अल्पसंख्यक समूहों के अधिकारों और सांस्कृतिक पहचान की कद्र नहीं करता उसके लिए अपने सदस्यों की निष्ठा प्राप्त करना मुश्किल होता है।

7.4 राष्ट्रवाद और बहुलवाद

'एक संस्कृति-एक राज्य' के विचार को त्यागते ही यह ज़रूरी हो जाता है कि ऐसे तरीकों के बारे में सोचा जाए जिसमें विभिन्न संस्कृतियाँ और समुदाय एक ही देश में फल-फूल सकें। इस लक्ष्य को पाने के लिए ही अनेक लोकतांत्रिक देशों ने सांस्कृतिक रूप से अल्पसंख्यक समुदायों की पहचान को स्वीकार करने और संरक्षित करने के उपायों को शुरू किया है। भारतीय संविधान में धार्मिक, भाषायी और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों की संरक्षा के लिए विस्तृत प्रावधान हैं।

विभिन्न देशों में समूहों को जो अधिकार प्रदान किये गये हैं, उनमें शामिल हैं – अल्पसंख्यक समूहों एवं उनके सदस्यों की भाषा, संस्कृति एवं धर्म के लिए संवैधानिक संरक्षा के अधिकार। कुछ मामलों में इन समूहों को विधायी संस्थाओं और अन्य राजकीय संस्थाओं में प्रतिनिधित्व का अधिकार भी होता है। इन अधिकारों को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है कि ये अधिकार इन समूहों के सदस्यों के लिए कानून द्वारा समान व्यवहार एवं सुरक्षा के साथ ही समूह की सांस्कृतिक पहचान के लिए भी सुरक्षा का प्रावधान करते हैं। इसके अलावा, इन समूहों को राष्ट्रीय समुदाय के एक अंग के बतौर भी मान्यता देनी होती है। इसका मतलब यह कि राष्ट्रीय पहचान को समावेशी रीति से परिभाषित करना होगा जो राष्ट्र-राज्य के तमाम सदस्यों की महत्ता और अद्वितीय योगदान को मान्यता दे सके।

हालाँकि यह उम्मीद की जाती है कि समूहों को मान्यता और संरक्षा प्रदान करने से उनकी आकांक्षाएँ संतुष्ट होंगी, फिर भी, हो सकता है कि कुछ समूह पृथक राज्य की माँग पर अडिग रहें। यह विरोधाभासी भी प्रतीत हो सकता है कि जहाँ दुनिया में भूमंडलीकरण का दौर ज़ारी है वहीं राष्ट्रीय आकांक्षाएँ अभी भी बहुत सारे समूह और समुदायों को उद्वेलित कर रही हैं। ऐसी माँगों से लोकतांत्रिक ढंग से निपटने के लिए यह ज़रूरी है कि संबंधित देश अत्यंत उदारता एवं दक्षता का परिचय दें।

कुल मिलाकर, राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के अधिकार को आमतौर पर इस रूप में समझा जाता था कि इसमें राष्ट्रीयताओं के लिए स्वतंत्र राज्य का अधिकार भी सम्मिलित है। लेकिन यह नामुमकिन है कि प्रत्येक राष्ट्रीय समूह को स्वतंत्र राज्य प्रदान किया जाए। साथ ही, यह संभवत: अवांछनीय भी होगा। यह ऐसे राज्यों के गठन की ओर ले जा सकता है जो आर्थिक और राजनीतिक क्षमता की दृष्टि से बेहद छोटे हों और इससे अल्पसंख्यक समूहों की समस्याएँ

राष्ट्रवाद

आओ कुछ करके सीखे

भारत और भारत से बाहर आत्म-निर्णय के अधिकार की माँग कर रहे विभिन्न समूहों से संबंधित समाचार पत्र -पत्रिकाओं की कतरनों को इकट्ठा करो। निम्न मामलों पर अपनी राय बनाओ।

- इन माँगों के पीछे क्या कारण हैं?
- इनके संघर्ष की प्रकृति क्या है?
- क्या उनकी माँग जायज है?
- आप क्या सोचते हैं? संभव समाधान क्या हो सकता है?

और बढ़ें। इस अधिकार की अब यह पुनर्व्याख्या की जाती है – इसका मतलब है राज्य के भीतर किसी राष्ट्रीयता के लिए कुछ लोकतांत्रिक अधिकारों की स्वीकृति।

हम ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जो समूहों की पहचान को मान्यता देने के महत्त्व के प्रति काफी सचेत है। आज हम ऐसे बहुत से संघर्षों के साक्षी हैं जो समूह की पहचान की मान्यता के लिए चल रहे हैं तथा राष्ट्रवाद की भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस बात की ज़रूरत है कि हम राष्ट्रीय पहचान के उनके दावों की सत्यता को स्वीकार करें लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम राष्ट्रवाद के असहिष्णु और एकजातीय स्वरूपों के साथ कोई सहानुभूति बरतें।

राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद पर रवींद्रनाथ ठाकुर की समालोचना
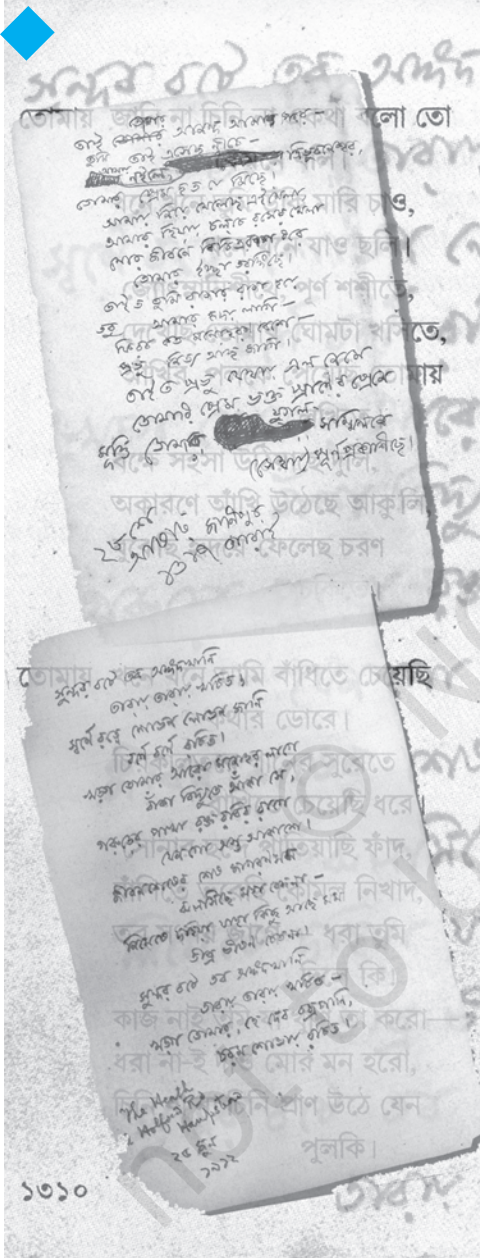
"राष्ट्रवाद हमारा अंतिम आध्यात्मिक मंजिल नहीं हो सकता। मेरी शरणस्थली तो मानवता है। मैं हीरों की कीमत पर शीशा नहीं खरीदूँगा और जब तक मैं जीवित हूँ देशभक्ति को मानवता पर कदापि विजयी नहीं होने दूँगा।" यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था। वे औपनिवेशिक शासन के विरोधी थे और भारत की स्वाधीनता के अधिकार का दावा करते थे। वे महसूस करते थे कि उपनिवेशों के ब्रितानी प्रशासन में 'मानवीय संबंधों की गरिमा बरकरार रखने' की गुंजाइश नहीं है। यह एक ऐसा विचार है जिसे ब्रितानी सभ्यता में भी स्थान मिला है। टैगोर पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध करने और पश्चिमी सभ्यता को खारिज़ करने के बीच फ़र्क करते थे। भारतीयों को अपनी संस्कृति और विरासत में गहरी आस्था होनी ही चाहिए लेकिन उन्हें बाहरी दुनिया से मुक्त भाव से सीखने और लाभान्वित होने का प्रतिरोध नहीं करना चाहिए।

टैगोर जिसे 'देशभक्ति' कहते थे, उसकी समालोचना उनके लेखन का स्थायी विषय था। वे देश के स्वाधीनता आंदोलन में मौजूद संकीर्ण राष्ट्रवाद के कटु आलोचक थे। उन्हें भय था कि तथाकथित भारतीय परंपरा के पक्ष में पश्चिम की खारिज़ी का विचार यहीं तक सीमित रहने वाला नहीं है। यह अपने देश में मौजूद ईसाई, यहूदी, पारसी और इस्लाम समेत तमाम विदेशी प्रभावों के खिलाफ़ आसानी से आक्रामक भी हो सकता है।

राष्ट्रवाद

प्रश्नावली
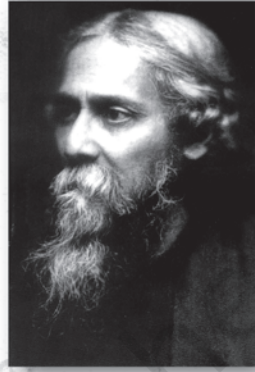
1. राष्ट्र किस प्रकार से बाकी सामूहिक संबद्धताओं से अलग है?
2. राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के अधिकार से आप क्या समझते हैं? किस प्रकार यह विचार राष्ट्र-राज्यों के निर्माण और उनको मिल रही चुनौती में परिणत होता है?
3. हम देख चुके हैं कि राष्ट्रवाद लोगों को जोड़ भी सकता है और तोड़ भी सकता है। उन्हें मुक्त कर सकता है और उनमें कटुता और संघर्ष भी पैदा कर सकता है। उदाहरणों के साथ उत्तर दीजिए।
4. वंश, भाषा, धर्म या नस्ल में से कोई भी पूरे विश्व में राष्ट्रवाद के लिए साझा कारण होने का दावा नहीं कर सकता। टिप्पणी कीजिए।
5. राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रेरित करने वाले कारकों पर सोदाहरण रोशनी डालिए।
6. संघर्षरत राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के साथ बर्ताव करने में तानाशाही की अपेक्षा लोकतंत्र अधिक समर्थ होता है। कैसे?
7. आपकी राय में राष्ट्रवाद की सीमाएँ क्या हैं?

प्रश्नावली